RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-04
Issue-05
May-2019

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com[UGC Listed Journal]

# हिन्दी–गद्य शैली का इतिहास एवं विकास यात्रा

नीरज कुमारी

शोधार्थी, हिंदी विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक

**ARTICLE DETAILS**

**Article History**
*Published Online:* 25 May 2019

**Keywords**
हिंदी गद्य 11वीं शताब्दी राजस्थानी

**ABSTRACT**

हिंदी गद्य के आरंभ के संबंध में विद्वान एकमत नहीं है। कुछ 10वीं शताब्दी मांनते हैं कुछ 11 वीं शताब्दी, कुछ 13 शताब्दी। राजस्थानी एवं ब्रज भाषा में हमें गद्य के प्राचीनतम प्रयोग मिलते हैं। राजस्थानी गद्य की समय सीमा 11वीं शताब्दी से 14वीं शताब्दी तथा ब्रज गद्य की सीमा 14वीं शताब्दी से 16वीं शताब्दी तक मानी जाती है। ऐसा माना जाता है कि 10वीं शताब्दी से 13वीं शताब्दी के मध्य ही हिंदी गद्य की शुरुआत हुई थी।

## परिचय

हिन्दी–गद्य शैली का इतिहास बहुत विस्तृत है। तब भी संक्षेप में यहां उसकी चर्चा करना आवश्यक है। केवल कुछ मुख्य बातों का उल्लेख करके उसका दिग्दर्शन कराना पाठकों के लिए उपयोगी होगा।

राष्ट्रभाषा हिन्दी के गद्य का जन्म बहुत प्राचीन काल में हुआ था। परन्तु निश्चित समय के विषय में बड़ा मतभेद है। कारण, प्राचीन गद्यग्रन्थ दुर्लभ हैं। भारत में प्राचीन हस्तलिखित पोथियों के कितने ही विशाल भाण्डार विदेशी आक्रमणकारियों द्वारा नष्टभ्रष्ट कर दिये गये। इतिहास इस बात का साक्षी है। राष्ट्रविप्लव के समय भी अनेक प्राचीन ग्रन्थागार विनष्ट हो गये। प्राचीन हस्तलेखों की बहुत बड़ी राशि आज भी देश भर में जहां–तहां बिखरी पड़ी है। जो पुरानी पोथियां कहीं–कहीं संग्रहालयों में पड़ी हुई हैं उनमें से भी अधिकांश का निरीक्षण–परीक्षण और अध्ययन–अनुशीलन इस मुद्रण–युग में नहीं हो रहा है। अतः दृढ़–निश्चय के साथ यह नहीं कहा जा सकता कि पुराकाल में गद्य लिखा ही नहीं जाता था।

## प्राचीन संस्कृति–ग्रन्थों में गद्य का रूप

अनेक प्राचीन संस्कृति–ग्रन्थों में गद्य का रूप मिलता है। फिर संस्कृत भाषा से आविर्भूत और संस्कृत–साहित्य से पूर्णतः प्रभावित हिन्दी में गद्य का अभाव मानना तर्क–युक्ति–संगत नहीं जान पड़ता। यद्यपि प्राचीन भारतीय साहित्य अधिकतर पद्यबद्ध ही उपलब्ध है तथापि केवल साहित्य–रचना के निमित्त ही पद्य का प्रयोग होता रहा होगा। जनता के सामाजिक व्यवहार में गद्य का अस्तित्व तो अवश्य ही होगा। लोग आपस में बातचीत करने के लिए गद्य का व्यवहार करते होंगे। पत्राचार में भी गद्य व्यवहृत होता होगा। व्यावसायिक धन्धों, बाजारों, यात्राओं, उत्सवों, प्रशासन–कार्यों, अन्तर्प्रान्तीय व्यापारों आदि में पद्यमयी भाषा का उपयोग कदापि नहीं होता होगा। इन सारे कामों में गद्य ही चलता होगा। किन्तु राजनीतिक क्रान्तियों के समय हस्तलिखित साहित्य के प्रचुर परिमाण में नष्ट होते रहने पर भी, लोककण्ठ में बसे रहने के कारण, पद्यमय साहित्य का बहुलांश सुरक्षित रहता चला आया और गद्यमय लिपिबद्ध साहित्य नष्ट हो जाने पर पुनः जन लोक के सामने न आ सका।

देश में राजनीतिक उथल–पुथल के कितने ही अवसर आये और उन भयंकर हलचलों में धन–धन की हानि के साथ–साथ साहित्य की भी अपूरणीय क्षति हुई। बिहार में ही 'नालन्दा' और 'विक्रमशिला' नामक विश्वविद्यालयों में अतिशय विशाल ग्रन्थागार थे, जिन्हें बख्तियार खिलजी ने जला डाला। उनमें पद्यग्रन्थों के अतिरिक्त गद्यग्रन्थ भी अवश्य रहे होंगे। ऐसी ही दुर्भाग्यपूर्ण दुर्घटनाओं के कारण नतीजा यह हुआ कि अब न क्रमबद्ध इतिहास मिलता है और न क्रमबद्ध साहित्य। तब भी असंदिग्ध रूप से यह निश्चित बात कही जा सकती है कि पुराकाल में पद्य–रचना के प्रचलन के साथ–साथ गद्य–रचना का भी प्रचार था।

## हिन्दी–साहित्य का इतिहास

हिन्दी–साहित्य का इतिहास लिखने वाले विद्वानों ने विक्रम की तीसरी शती के भरत मुनि द्वारा 'लोकभाषा' के लिए 'देशभाषा' शब्द का प्रयोग होना लिखा है। यह लोकभाषा या देशभाषा केवल पद्य में ही नहीं, गद्य के लिए भी प्रयुक्त होती रही होगी। विक्रम की सातवीं शती के संस्कृत के महाकवि वाणभट्ट ने अपने प्रसिद्ध महाकाव्य 'हर्षचरित' में सातवीं शती के संस्कृत के महाकवि वाणभट्ट ने अपने प्रसिद्ध महाकाव्य 'हर्षचरित' में संस्कृत–कवियों के साथ जहां भाषा–कवियों का भी उल्लेख किया है वहां इस बात का सहज ही अनुमान होता है कि देश में संस्कृत के साथ–साथ एक जनभाषा भी थी, जिसमें जनता के अन्दर जनता की ही बोलचाल की भाषा में साहित्य रचना करनेवाले कवि यदि विद्यमान थे तो गद्यकार भी अवश्य ही रहे होंगे। आखिर लौकिक और व्यावहारिक प्रसंगों में गद्य से ही काम लिया जाता होगा। जीवन के नित्य नियमित कार्यों में पदे–पदे पद्य का प्रयोग कभी संभव नहीं जान पड़ता।

RRIJM 2015, All Rights Reserved 

इस प्रकार 'देशभाषा' के अस्तित्व का पता पाने पर स्वभावतः यह धारणा बंधती है कि विक्रम की तीसरी शती में भी हिन्दी–गद्य का कोई प्राचीन रूप निस्संदेह लोक–प्रचलित रहा होगा। और, जब अनुमान का सूत्र वहां तक साधार पहुंच पाता है तब यह नहीं कहा जा सकता कि उस काल के पूर्व गद्य का अस्तित्व था ही नहीं।

जो हो, हिन्दी में जो बचे–खुचे पुराने गद्यग्रन्थ मिले हैं वे गोरखनाथी पंथ के साम्प्रदायिक ग्रंथ हैं और उनका समय लगभग चौदहवीं–पन्द्रहवीं शती अनुमित है। उनकी भाषा में प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं के भी शब्द पाये जाते हैं। विद्वानों ने उस भाषा को ब्रजभाषा–गद्य का पुराना रूप माना है। कभी देश–भर में ब्रजभाषा का बड़ा व्यापक प्रचार था और यही काव्यभाषा के रूप में भी स्वीकृत तथा सर्वत्रप्रचलित थाय इसलिए ग्रन्थरचना में ब्रजभाषा–गद्य का भी उपयोग होता था। यह सर्वथा स्वाभाविक है। इसी प्रकार इसके पहले के पुरातन समय में भी काव्यभाषा के साथ गद्यभाषा भी चलती होगी।

प्रस्तुत पुस्तक में गोस्वामी गोकुलनाथजी ही प्रथम गद्यकार के रूप में उपस्थित किये गये हैंय किन्तु उनके पिता गोस्वामी विट्ठलनाथजी ने भी 'शृंगार–रस–मंडन' नामक एक गद्यग्रन्थ लिखा था। विद्वानों के मतानुसार पिता की भाषा से पुत्र की भाषा विशेष व्यवस्थित है। फिर ब्रजभाषा–गद्य का एक और ग्रन्थ भक्त नाभादासजी का 'अष्टयाम' कहा जाता है जिसका रचना काल विक्र–संवत् 1660 (सन् 1603 ई.) के लगभग है। फिर सं. 1680 वि. (सन् 1623 ई.) के आस–पास की रची हुई दो गद्यात्मक पुस्तकें 'अगहन–माहात्म्य' और 'वैशाख–माहात्म्य' की भी चर्चा मिलती है, जिनके लेखक ओरछा–नरेश के आश्रित पंडित वैकुण्ठमणि शुक्ल थे। प्राचीन पोथियों की खोज में ब्रजभाषा–गद्य का 'नासिकेतोपाख्यान' ग्रन्थ भी मिल चुका है, जो विक्रम–संवत् 1760 (1703 ई.) के बाद का रचना हुआ प्रतीत होता है। इन प्राप्त प्रमाणों से सिद्ध होता है कि हिनदीगद्य की धारा सदर अतीत काल से चली आ रही है।

### वर्तमान युग में प्राचीन गद्य–रचना की खोज

वर्तमान युग में प्राचीन हस्तलिखित पोथियों की खोज होने लगी है। सरकार का ध्यान भी इधर आकृष्ट हुआ है। कुछ साहित्यिक प्रतिष्ठानों और शोध संस्थानों की ओर से यह काम व्यवस्थित रूप में हो रहा है। खोज के विवरण भी प्रकाशित होते हैं। इस तरह से उपलब्ध सामग्री के विधिवत् अध्ययन–मनन से जो परिणाम प्रकट होगा उससे भविष्य में कितने ही नये रहस्य उद्घाटित होंगे। शोध–परम्परा ज्यों–ज्यों अग्रसर होगी, कितनी ही पुरानी स्थापनाएं परिवर्तितत होती जायंगी। अतः बहुत संभव है कि हिन्दी के अब तक अप्राप्य पुराने गद्यग्रन्थों के गवेषणा क्रम में सुलभ होने पर कितनी ही आज तक की धारणाएं बदल जायं। परिवर्तनशील संसार में यह स्वाभाविक है।

सुरति मिश्र–कृत 'बैतालपचीसी' सं. 1767 (सन् 1710 ई. ) की गद्य–रचना है। आगरा–निवासी लल्लूलाल ने फिर उसी को खड़ी बोली में लिखा था, जिसमें फारसी के भी प्रचलित तथा परिचित शब्द थे। पुनः सं. 1852 वि. (सन् 1795 ई.) में जयपुर–नरेश के आदेश से लाला हीरालाल ने 'आईन अकबरी की भाशा वचनिका' नाम की जो एक बड़ी गद्य–पुस्तक लिखी, उसकी बोलचाल की भाषा में भी अरबी, फारसी के चालू शब्द व्यवहृत थे। किन्तु लल्लूलाल और हीरालाल की भाषा में ही खड़ी बोली के गद्य का पूर्व रूप झलका था यद्यपि इन दोनों के गद्य में ब्रजभाषा–गद्य की छाप स्पष्ट है।

ब्रजभाषा–गद्य की परम्परा, हिन्दी–काव्यग्रन्थों की टीकाओं में, उन्नीसवीं शती तक चलती रही। किन्तु ब्रजभाषा–गद्य के साथ ही साथ खड़ी बोली का गद्य भी पुराने जमाने से ही चलता आ रहा था। अकबर के समय के गंग कवि की 'चन्दछन्द बरनन की महिमा' नामक गद्य–पुस्तक में ही खड़ी बोली हिन्दी का रूप स्पष्ट हो गया था। यों तो साहित्येतिहास के विद्वान लेखकों के विचारानुसार विक्रम की चौदहवीं शती में ही सुप्रसिद्ध कवि 'खुसरो' ने खड़ी बोली में पद्य और पहेलियां लिखकर उसका निखरा हुआ–सा रूप प्रदर्शित कर दिया था, जिससे यह भी आभास मिलता है कि उनके समकालीन समाज में खड़ी बोली के लिखने समझने की क्षमता रही होगी। उक्त विद्वानों ने तो अपभ्रंश भाषा के काव्यों और भक्तिगाथा काल के सन्त कवियों की रचनाओं की सधुक्कड़ी भाषा में भी खड़ी बोली की झलक मिलने का संकेत किया है बौद्ध सिद्धों से कबीर तक की रचनाओं में खड़ी बोली के रूप की छाया देखी गई है।

उपर्युक्त गंग कवि के बाद पटियाला–दरबार के कथावाचक रामप्रसाद निरजनी ने सं. 1798 वि. (सन् 1741 ई.) में 'योगवासिष्ठ' नामक जो ग्रन्थ रचा था, उसी में खड़ी बोली का निखरा हुआ यप पहले–पहले सामने आया। तदनन्तु मध्य प्रदेश के पं. दौलत राम ने 'पद्मपुराण' का जो अनुवाद खड़ी बोली में सं. 1818 वि. (सन् 1761 ई.) में किया उसकी भाषा भी 'योगवासिष्ठ' की तुलना में परिमार्जित नहीं मानी गई है। परन्तु इसी के बाद हिन्दी–गद्य के जो चार प्रमुख प्रवर्त्तक हुए मुन्शी सदासुखलाल, इन्शा अल्ला खां, लल्लूलाल और सदल मिश्र उन्हीं की भाषा में खड़ी बोली का आधुनिक रूप स्थिर हुआ। प्रथम सज्जन दिल्ली के थे और शेष तीन का परिचय इस पुस्तक में द्रष्टव्य है। मुन्शी सदासुखलाल 'नियाज' फारसी और उर्दू के भी लेखक थे। उनका जन्म सन् 1746 ई. में और देहान्त सन् 1824 ई. में हुआ था। इन्हीं चार सुपरिचित गद्यकारों ने खड़ी बोली को हिन्दी गद्य के क्षेत्र में खड़ा किया। इन चारों से आगे की परम्परा का परिचय प्रस्तुत पुस्तक में मिलेगा।

हिन्दी–गद्य में विकास में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी का उद्योग विशेश उल्लेखनीय और चिरसमरणीय है। इन दोनों के बाद हिन्दी–गद्य शैली की जो

RRIJM 2015, All Rights Reserved 

धारा चली वही आज साहित्यक्षेत्र में प्रखरता से प्रवाहित हो रही है। उस धारा में क्रमशः स्वच्छता और सरसता बढ़ती जा रही है। आज हिन्दी–गद्य का सुविकसित रूप बड़ा आकर्षक हो गया है। दिन–दिन उसकी शक्तिवृद्धि हो रही है। उसके अनेक समर्थ लेखक आज साहित्य के विविध विषयों के क्षेत्रा में प्रतिष्ठित और प्रसिद्ध हैं। अब हिन्दी के यशस्वी गद्यकारों की तालिका बहुत लम्बी हो गई है। प्रधान गद्यकारों के नाम भी गिनाना कठिन काम है। हिन्दीगद्य दिनानुदिन प्रगतिपथ पर अग्रसर हो रहा है। उसका भविष्य निस्सन्देह परमोज्ज्वल है।

**निष्कर्ष**

हिंदी में गद्य का विकास बहुत बाद में हुआ और इसने अपनी शुरुआत कविता के माध्यम से जो कि ज्यादातर लोकभाषा के साथ प्रयोग कर विकसित की गई। हिंदी का आरंभिक साहित्य अपभ्रंश में मिलता है। हिंदी में तीन प्रकार का साहित्य मिलता है– गद्य, पद्य और चम्पू। हिन्दी की पहली रचना कौन सी है इस विषय में विवाद है लेकिन ज़्यादातर साहित्यकार लाला श्रीनिवासदास द्वारा लिखे गये उपन्यास परीक्षा गुरु को हिन्दी की पहली प्रामाणिक गद्य रचना मानते हैं।

**सन्दर्भ**

1. सत्येन्द्र तनेजा (१६७१). हिन्दी नाटकः पुनर्मूल्यांकन. ग्रंथम (कानपुर). मूल से 7 अप्रैल 2014 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 29 जुलाई 2014.
2. गोपीनाथ तिवारी (१६५६). भरतेन्दुकालीन नाटक साहित्य. हिन्दी भवन. मूल से 7 अप्रैल 2014 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 29 जुलाई 2014.
3. आचार्य रामचन्द्र, शुक्ल (2013). हिंदी साहित्य का इतिहास. इलाहाबादरू लोकभारती प्रकाशन. पृ० 54.